JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

RENUKA KSHETR KE PRASHIDHH AVANADHH VADYA

Monika Kumari

Assistant Professor in Music-I and Ph D Research Scholar, Eternal University, Baru Sahib

Dr YS Parmar Govt PG College Nahan

Abstract

संगीत एक ऐसी विधा है जो मानव हृदय की गहराईयों को छूकर उसके मन के सुप्त तारों को झंकृत कर देती है। संगीत का यह माधुर्य लय और ताल के बेजोड़ संगम पर टिका है। जिला सिरमौर का रेणुका क्षेत्र अपनी समृद्ध लोक–संस्कृति व सांगीतिक परम्पराओं के लिए विश्व प्रसिद्ध है। पारम्परिक लोक–गीतों के साथ–साथ यंहा के लोक वाद्य भी अपनी प्राचीनता के लिए जाने जाते है। संगीत के आधार ग्रंथों में वाद्यां को मुख्यतः चार वर्गों में बांटा गया हैः तत्, सुषिर, घन व अवनद्ध। रेणुका क्षेत्र के अवनद्ध लोक–वाद्ययन्त्रों की अपनी एक अलग शैली है। इस क्षेत्र के कुछ अवनद्ध वाद्यों के नाम हिमाचल प्रदेश के अन्य क्षेत्रों के वाद्ययन्त्रों से मेल जरूर खाते है, परन्तु इनकी बनावट व वादन विधियां भिन्न–भिन्न है। शोध पत्र में रेणुका क्षेत्र के कुछ प्रसिद्ध लोक वाद्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

मुख्य–शब्दः अवनद्ध वाद्य, रेणुका क्षेत्र, लोक–वाद्य।

परिचयः

हिमालय की गोद में बसा सार्वभौमिक महता रखने वाला हिमाचल प्रदेश कुल 12 जिलों में विभाजित है। यह प्रदेश अपनी समृद्ध पारम्परिक लोक संस्कृति के लिए पूरे विश्व में ख्याति प्राप्त है। हिमाचल प्रदेश के 12 जिलों में जिला सिरमौर जहां अपने षैगोलिक व सांस्कृतिक आधार पर समृद्ध है, वहीं आर्थिक रूप में अपना विशेष स्थान रखता है साथ ही इसकी राजनैतिक चेतना दीर्घकाल से जनमानस को आंदोलित करती आ रही है। भौगोलिक स्थिति के आधार पर यह जिला तीन भागों में विभाजित है– गिरीपार क्षेत्र ; ज्तंदे ळपतप ।तमं द्धए गिरीआर क्षेत्र ; ब्पे ळपतप द्ध तथा क्यारदादून या दून घाटी ; च्संपद व िज्ञंपतंकंकनद वत क्ववद टंससमल द्ध ।[1]

[1] txeksgu cyks[kMk& vykSfdd fgekpy izns'k] i`"B la[;k&593

रेणुका क्षेत्र का परिचयः

जिला सिरमौर की प्रमुख नदी में से एक है– गिरी नदी । यह सिरमौर ज़िले में 55 मील बहते हुए इस ज़िले को लगभग बराबर दो भागों में बांटती हैं– गिरीआर क्षेत्र तथा गिरीपार क्षेत्र। रेणुका क्षेत्र सिरमौर ज़िले के गिरीपार या ट्रांस गिरी क्षेत्र के अर्न्तगत आता है।[2] गिरिपार एक पहाड़ी क्षेत्र है जहां पर आदिम जाति के वंशज हाटी लोग निवास करते है। इस क्षेत्र की सबसे ऊंची चोटी चूड़धार है जो इसे शिमला ज़िले से अलग करती है। इसी के समकक्ष पूर्व–दक्षिण में नौहराधार, हरिपुरधार पर्वत श्रेणियां हैं, जोकि सिरमौर को जिला शिमला के उपमण्डल चौपाल से अलग करती है। चूड़धार चोटी के दूसरी ओर पश्चिम दिशा में धार–टपरोली–जटोल व उत्तर–दक्षिण में धार–पेणकुफर, धार–देवठी तथा धौटाड़ी–धार स्थित हैं।

मां रेणुका व महर्षि जमदग्नि की निवास स्थली रेणुका क्षेत्र जिला सिरमौर के पांच विधानसभा क्षेत्रों में से एक हैं। गिरीपार में फैला रेणुका क्षेत्र अपनी लोक संस्कृति, रहन–सहन, रीति–रिवाज व त्योहारों के लिए अन्य विधानसभा क्षेत्र (नाहन, शिलाई, पांवटा, पच्छाद) से अलग है। यहां के निवासी सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। सत्यप्रियता, परिश्रम व ईमानदारी इनमें कूट–कूट कर भरी है। रेणुका क्षेत्र अपनी बहुमूल्य वन सम्पदा व खनिज सम्पदा क लिए पूरे प्रदेश में प्रसिद्ध है। रेणुका क्षेत्र पूर्ण रूप से पहाड़ियों से ढका है। इनमें जड़ी–बूटियों सहित बान, केल, देवदार, चीड़, बुराश, कफ्फल आदि के वृक्ष शामिल हैं। इनमें से कुछ पहाडियां बहुत जटिल व भयानक हैं।

रेणुका क्षेत्र का लोक संगीत

किसी भी क्षेत्र की पहचान वहां के जनजीवन में प्रचलित रीति–रिवाजों, रहन–सहन व परम्पराओं से होती है। जिस देश की संस्कृति जितनी समृद्ध होगी, वह देश उतना समृद्ध व विकसित कहलाता है। जिला सिरमौर का रेणुका क्षेत्र अपनी समृद्ध परम्पराओं व संस्कृति के लिए पूरे भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। यहां का लोक संगीत अपनी प्राचीनता के लिए देशभर में जाना जाता है।

लोक–संगीतः संगीत एक ऐसी विधा है जो मानव हृदय की गहराईयों को छूकर उसके मन के सुप्त तारों को झंकृत कर देती है। संगीत का यह माधुर्य लय और ताल के बेजोड़ संगम पर टिका होता है। लोक–संगीत दो शब्दों के मेल से बना है–लोक तथा संगीत। लोक शब्द से अभिप्राय एक व्यक्ति से नहीं अपितु समुचे समाज से है, मानव–जाति से है। संगीत शब्द गायन, वादन व नृत्य का मिश्रण है अर्थात लोक संगीत से अभिप्राय किसी समुदाय विशेष के संगीत से है जोकि विभिन्न स्थानों और भाषाओं के आधार पर भी पृथक–पृथक नाम व रूप धारण कर लेता है। लोक–संगीत जनसाधारण का संगीत है जिसका आधार लोक संस्कृति है। यह जनसाधारण के सामाजिक उत्सवों एवं पर्वो, रीति–रिवाजों तथा रहन–सहन एवं क्षेत्रीय भाषाओं से सीधा सम्बन्ध रखता है।

[2] xtsfV;j vkWQ n fljekSj LVsV& 1934] Hkkx&,d] i`"B la[;k&1

लोक वाद्यों का उद्‌गम एवं विकास

वाद्यो की उत्पति कब और कैसे हुई इस विषय मे विद्वानों के मतों मे भेद है। भारतवर्ष में सर्वप्रथम अवनद्ध वाद्यों में भगवान शिव द्वारा ड़मरू तथा तंत्री वाद्यों में मां सरस्वती द्वारा वीणा आदि की उत्पति मानी गई है।[3] धीरे–धीरे अन्य वाद्य भी अस्तित्व में आने लगे। वाद्यों के अन्य दो वर्ग सुषिर तथा घन कब अस्तित्व में आए इसके बारे में मतभेद है। संगीत के विषय में जानकारी देने वाला पहला ग्रंथ भरतमुनि द्वारा रचित 'नाट्यशास्त्र' है। इसका रचनाकाल 200 ई0पू0 से 400 ई0 पू0 माना जाता है। उस समय वाद्यों का प्रयोग नाट्य की संगत के लिए किया जाता था। भरतमुनि के काल में वाद्यवृन्द का भी प्रचलन था जिसे 'कुतुप' कहकर पूकारा जाता था।[4] मध्यकाल तक आते–2 संगीत राजाओं के जीवन का अभिन्न अंग बन गया था। परन्तु इस समय वाद्यों का प्रयोग केवल नृत्य तथा गायन की संगत के लिए किया जाता था। 19वीं सदी के आरम्भ से वाद्य धीरे–धीरे गायन या नृत्य का साथ देने के अलावा अन्य प्रयोजनो में प्रयुक्त किए जाने लगे और प्रदर्शनकर्ताओं ने उन्हें एकल उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया। जहां व्यक्तिगत कलाकारों ने स्वयं का विवेक लगाकर एकल वादन की पद्धति की शुरूआत की वहीं संगीतकारों ने अब वाद्य–वृन्द की पद्धति के विकसित रूप को लागू किया ।

ज्ञान–विज्ञान के प्रत्येक विषय में सुचारू रूप से सुव्यवस्थित अध्ययन के लिए वर्गीकरण नितांत आवश्यक है। वर्गीकरण की सहायता से किसी भी विषय में अलग–अलग अंगो और उपांगो का अध्ययन सूक्ष्म, स्पष्ट एवं सुगमता से किया जा सकता है।[5] नाट्यशास्त्र में वाद्यों के वर्गीकरण के विषय में इस प्रकार से वर्णन मिलता है–"वीणादि तन्त्री वाद्य तत्, पीटे जाने वाले पुष्कर, कांस्य आदि धातु निर्मित तालार्थ वाद्य घन तथा फूंक मारकर हवा भरते हुए बजने वाले बांसुरी आदि वाद्य सुषिर वाद्य है।[6]

शास्त्रीय संगीत की तरह यहां प्रचलित वाद्यों को भी हम मुख्यतः चार भागों में बांट सकते है–

- अवनद्ध वाद्य
- घन वाद्य
- सुषिर वाद्य
- तत् वाद्य

रेणुका क्षेत्र के प्रसिद्ध अवनद्ध लोक–वाद्यः

लोक वाद्यों का लोक–संगीत के साथ गहरा सम्बन्ध है। पत्येक क्षेत्र के अपने कुछ पारम्परिक वाद्य हमेशा से ही रहे है जिनका वादन स्वतन्त्र रूप में या गायन तथा नृत्य के विधा के साथ हमेशा से होता आ रहा है। रेणुका क्षेत्र में भी कई ऐसे वाद्य है जो सैंकड़ो सालों से देवालयों तथा अन्य अनेक अवसरों पर निरन्तर बजाऐ जाते हं। धार्मिकता से इनका अटूट सम्बन्ध इन वाद्य की महत्वपूर्ण विशेषता है जो इन्हें आज के डिजिटल युग में भी जीवित रखे हुए है।

[3] MkW0 ykyrh.k fej] Hkkjrh; laxhr ok|]] i`"B la[;k&196
[4] MkW0 e`aR;qt; 'kekZ] laxhr eSuqvy] i`"B la[;k&253
[5] Mk0 lwjr Bkdwj] fgekpy ds yksd ok|] i`"B la[;k&22
[6] Jh ckcwyky 'kkL=h] fgUnh ukV~;'kkL= ¼lEiknd O;k[;kdkj½] i`"B la[;k&1

1. ड़मरू वाद्य

डमरू वाद्य भारत का सबसे प्राचीनतम वाद्य माना जाता है। आध्यात्मिक आधार पर ड़मरू वाद्य भगवान शिव द्वारा निर्मित माना जाता है। ड़मरू रेणुका क्षेत्र के प्राचीन वाद्य में से एक है।

बनावट– यह वाद्य शीशम, खैर, तून, तथा चंदन की लकड़ी का बनाया जाता है। इसके दोनों सिरों को बकरे की खाल से मढ़ा जाता है।

वादन– सिरमौर जिले के रेणुका क्षेत्र में इस वाद्य का वादन शिरगुल व गुग्गा–पीर की गाथाओं के गायन के साथ लगभग 400 सालो से होता आ रहा है तथा वर्तमान में भी यह प्रथा रेणुका क्षेत्र में हर्षोल्लास के साथ निभाई जा रही है।

2. ढोलक वाद्य

ढ़ोलक वाद्य रेणुका क्षेत्र का लोकप्रिय तथा महत्वपूर्ण वाद्य है। स्थानीय लोग इसे 'ढ़ोल' अथवा 'ढ़ोलकी' नामों से भी पुकारते है। बनावट– इस वाद्य में श्शीशम, खैर तथा आम की लकड़ी के खोल पर बकरे या बकरी की खाल की पुड़ियां मड़ी जाती है।

वादन–विधि–ढ़ोलक को गोद में रखकर, गले में लटकाकर, घुटनों के नीचे रखकर या जमीन पर रखकर दोनो हाथों से बजाया जाता है। रेणुका क्षेत्र में ढ़ोलक वाद्य का वादन गीत, भजन, लोक–गीत, महिला–संगीत तथा मंच के कार्यक्रमों में किया जाता है।

3. ढोल वाद्य

ढ़ोल की बनावट– ढ़ोल की बनावट ढ़ोलक की तरह ही है। परन्तु इसका आकार ढ़ोलक से बड़ा होता है। इसके दोनों तरफ़ बकरे की खाल से बनी पुड़ी चढ़ाई जाती है तथा पुड़ी को कसने के लिए सूत की रस्सी का प्रयोग किया जाता है। स्वर को चढ़ाने तथा उतारने के लिए पीतल तथा स्टील के छल्ले लगाये जाते है। दायां सिरा पतली खाल से तथा बायां सिरा मोटी खाल से मढ़ा जाता है। बायें पुड़ी के अन्दर से विशेष लेप लगात है जिसे बजाने से गूंज पैदा होती है।

वादन विधि– वादक ढ़ोल को इसकी कमर पर लगी रस्सी को अपने बाऐ कन्धे पर लटका कर ढोल को एक छड़ी की सहायता से बजाते है जिसे सीनीस भाषा में 'भाईटा' या 'ढंगयाटा' कहते है। यह अर्धचन्द्रकार में मुड़ी हाकती है। इसकी लम्बाई लगभग 13 इंच होती है।

प्रयोग–ढ़ोल वाद्य इस क्षेत्र का प्रमुख वाद्य है। इसका प्रयोग हर प्रकार के धार्मिक कार्यों तथा मांगलिक व अमांगलिक कार्यों, नृत्य, गीत इत्यादि के साथ किया जाता है। बिशु मेलें के अवसर पर 'जंगताल तथा बिशु ताल' को वादक बड़े चाव से ढ़ोल पर बजाते है।

4. नगाड़ा वाद्य

नगाड़ा दमामा का बड़ा रू॰ होता है। यह रेणुका क्षेत्र के पुराने वाद्य में से एक है। यह मुख्यतः प्रत्येक मन्दिर में रखे होते है जिसका वादन सुबह–शाम देवता की पूजा के समय किया जाता है। नगाड़े का वादन करने वाला वादक 'नगारची' कहलाता है।

निर्माण विधि– इसकी निर्माण विधि पूरी तरह दमामा वाद्य के समान है। यह भैंस या गाय की खाल से बना होता है। इसकी पिछली सतह में थोड़ा छिद्र होता है जिसें बजाने से पहले इसें घी डाला जाता है। घी डालने के बाद इसे करीब दाक या तीन घंटे भांग के पतों पर उलटा करके रखा जाता है जिससे इस वाद्य से एक विशेष गूंज निकलती है।

प्रयोग– नगाड़ा वाद्य ढ़ोल वाद्य का सहयोगी वाद्य माना जाता है। यह एक युद्ध वाद्य है जिसका प्रयोग पूराने समय में सेना में जोश भरने के लिए किया जाता था। परन्तु वर्तमान में ढ़ोल की भान्ति नगाड़ा का प्रयोग भी देव–जागरण, ठोड़ा–नृत्य आदि के साथ किया जाता है।

5.हुड़क वाद्य

हुड़क एक प्राचीन वाद्य है। इस वाद्य का वर्णन प्राचीन गंथों में भी मिलता है। महाभारत काल में 'पणव' मध्यकाल में 'आबज' तथा आधुनिक काल में यही वाद्य 'हुडक' नाम से जाना जाता है। हालांकि समय के साथ–साथ इसके कई नाम सामने आए परन्तु इसकी बनावट आज भी वैसी ही है जैसी प्राचीन समय में हुआ करती थी।

बनावट– हुडक वाद्य देखने में ड़मरू के समान है, परन्तु यह आकार में ड़मरू से बड़ा है। इसको दोनो ओर से बकरी की खाल से मड़ा जाता है। स्थानीय भाषा में इसे 'हुड़क' या 'हुडडुका' भी कहते है। इसके मध्य के पतले भाग को जिसे पटिट्का कहते है को बाये हाथ से पकड़ कर दायें हाथ से बताया जाता है।

प्रयोग–इस वाद्य का प्रयोग मुख्य रूप से लोक गाथाओं, हारूल व बुड़हा नृत्य के साथ किया जाता है।

5. ढ़ाकुली वाद्य

ढ़ाकुली वाद्य रेणुका क्षेत्र के लोक वाद्य में महत्वपूर्ण है। यह ड़मरू प्रजाति का लोक वाद्य है। यह वाद्य ड़मरू की तरह ही दिखता है, परन्तु यह आकार में ड़मरू से थोड़ा बड़ा होता है। इसका प्रयोग विशेष रूप से जीणीया गाथा और पाण्ड़वाणी गायन विधा के साथ किया जाता है।

6. दमेनु

दमेनु वाद्य दमामा का ही छोटा रूप है। आकार को छोड़कर इन दोनों वाद्य में कोई फ़र्क नजर नही आता।

बनावट– दमेनु वाद्य की खोल लोहे की बनी होती है। इसकी खोल कटोरे के आकार का होता है। इसकी पुड़ी भैंस या गााय की खाल की बनी होती है। इसको कसने के लिए चमड़े की डोरी का प्रयोग किया जाता है। जिस 'बेत' कहते है तथा बड़ी खुबसूरती से इसे घुमा–घुमाकर इसें पूड़ी को चढ़ाया जाता है।

वादन–विधि– दमेनु वाद्य का वादन के लिए दो छड़ियों का प्रयोग किया जाता है। इसे जमीन पर रखकर या रस्सी से गले में लटकाकर बजाया जाता है।

रेणुका क्षेत्र के अवनद्ध वाद्यों में जहां ढ़ोल, नगाड़ा, दमामा इत्यादि प्रमुख है वही सहायक वाद्य के रूप में दुमैनु का भी विशेष स्थान ह। इसका वादन भी सहायक वाद्य के रूप में किया जाता है। यह आकार में दमामा से छोटा है। यह दो छड़ियों की सहायता से बजाया जाता है।

7. दमामा वाद्य

दमाम नगार जोड़ी का एक प्रमुख वाद्य है। दमामा अपना स्वतन्त्र अझितत्व न रखकर नगार जोड़ी में नगाड़े की जोड़ी की भुमिका निभाता है। नगाड़े की पूर्णता दमामा पर आश्रित है अर्थात एक के बिना दूसरे का अस्तित्व गौंण है।

[1] डॉ0 लालतीण मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य,, पृष्ठ संख्या–196
[1] डॉ0 मृंत्युजय शर्मा, संगीत मैनुअल, पृष्ठ संख्या–253
[1] डा0 सूरत ठाकूर, हिमाचल के लोक वाद्य, पृष्ठ संख्या–22
[1] श्री बाबूलाल शास्त्री, हिन्दी नाट्यशास्त्र (सम्पादक व्याख्याकार), पृष्ठ संख्या–1

वाद्य यन्त्रों के छाया–चित्र:

ढ़ाकुली

ढोल

हुड्डक

दमानू

ढ़ोलक

नगाड़ा